शिक्षा का मनोवैज्ञानिक आधार

Child Development (बाल विकास) को Education Psychology के नाम से जाना जाता है।

Education + Psychology

Modification of Behaviour व्यवहार का परिमार्जन

Psychology ग्रीक भाषा से लिया गया है। यह शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है।

Psycho + Logus = आत्मा का वर्णन

1. Psychology को आत्मा का विज्ञान कहा गया है।
2. मन का विज्ञान
3. चेतना का विज्ञान (Consciousness)

विलियम कुन्डस ने जर्मनी के लिजपिंग विश्वविद्यालय अब इसका नाम कार्ल मार्क्स विश्वविद्यालय कर दिया गया है। उसमें मनोविज्ञान की सबसे पहली प्रयोगशाला स्थापित की।

4. व्यवहार का विज्ञान का अध्ययन –

Education
↓
Modification of Behaviour
↓
Study of behaviour for the modification of Behaviour → शिक्षा मनोविज्ञान

Psychology
↓
Study of Behaviour

पहला Education Psychologist थार्नडाईक को कहा जाता है।

शिक्षा मनोविज्ञान या बाल विकास के अध्ययन के उद्देश्य –

1. बाल विकास या शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षकों की सहायता करता है।
2. व्यक्तिगत भिन्नता की पहचान होती है।
3. छात्रों की अभियोग्यता की पहचान होती है।
4. छात्रों की रुचि की पहचान होती है।
5. छात्रों के विकासात्मक विशेषताओं की पहचान होती है।
6. शिक्षण अधिगम प्रक्रिया प्रभावशाली बनती है।
7. छात्रों की कमजोरियों का पता लगाने में सहायक होता है।
8. पाठ्यचर्या को प्रभावशाली बनाने में सहायता करता है।

बाल विकास के विषय क्षेत्र –

1. वृद्धि एवं विकास
2. वंशानुक्रम एवं वातावरण
3. व्यक्तिगत भिन्नता
4. अधिगम
5. व्यक्तित्व
6. पाठ्यचर्या निर्माण
7. मानसिक स्वास्थ्य
8. शिक्षण विधियाँ
9. निर्देशन एवं परामर्श
10. मापन एवं मूल्यांकन
11. अपवादात्मक बालक

शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययन की विधियाँ –

1. **अंतर्निरीक्षण विधि** – यह विधि संरचनावादियों की विधि थी। इस विधि का उपयोग कण्ट, टिचेनर स्टाउट, विलियम जेम्स आदि मनोवैज्ञानिकों द्वारा चेतन अनुभूति के तत्वों का अध्ययन करने के लिए किया गया था। अंतर्निरीक्षण का अर्थ होता है आत्म निरीक्षण।
    - अंतर्निरीक्षण में व्यक्ति किसी बाह्य वस्तु जैसे कविता, कहानी पर ध्यान देता है तथा उसका सही – सही प्रत्यक्षण करता है।
    - बाह्य वस्तु पर ध्यान देने से व्यक्ति में एक विशेष प्रकार की मनोदशा उत्पन्न होती है।

EduBull.com

- उत्पन्न मनोदशा का व्यक्ति स्वयं विधिवत अध्ययन या निरीक्षण करके बताता है।

2. **बहिदर्शन विधि –** इसमें व्यक्ति किसी बाह्य वस्तु का प्रत्यक्षण करता है।
3. **प्रयोगात्मक विधि –** शिक्षा मनोविज्ञान में प्रयोगात्मक विधि सबसे अधिक महत्वपूर्ण विधि मानी गई है। प्रयोगशाला विधि में शिक्षक या प्रयोगकर्ता छात्रों के व्यवहारों का अध्ययन एक नियंत्रित परिस्थिति में करते हैं।
   - जब प्रयोग की नियंत्रित अवस्था किसी प्रयोगशाला में उत्पन्न की जाती है। तब इस तरह के प्रयोग को प्रयोगशाला प्रयोग तथा जब प्रयोग की नियंत्रित अवस्था वास्तविक परिस्थिति या क्षेत्र प्रयोग कहा जाता है।
   - शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में शिक्षक प्रयोगशाला प्रयोग तथा क्षेत्र प्रयोग, दोनों ही करते हैं।
   - मनोवैज्ञानिक प्रयोग का आधार प्रयोगात्मक डिजाईन होता है।
4. **व्यक्ति अध्ययन विधि –** इस विधि में किसी भी इकाई का गहन तरीके से अध्ययन किया जाता है।

A. वृद्धि एवं विकास की अवधारणा एवं अधिगम से उसका संबंध

बाल–विकास – यह बालक में निरंतर, सकारात्मक रुप से चलने वाली वह प्रक्रिया है, जो व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन लाती है यह प्रक्रिया गर्भावस्था से मृत्यु तक निरंतर चलती रहती है। सही मायनों में बाल–विकास का अर्थ "बालक का सर्वांगीण" (all round) विकास ही है।

बाल–विकास ऐसी प्रक्रिया है जिसमें गुणात्मक (Qualitative) एवं परिमाणात्मक (Quantitative) दोनों प्रकार के परिवर्तन जुड़े रहते हैं।

ई.बी. हरलॉक के अनुसार – यह निरंतर, सकारात्मक चलने वाली वह प्रक्रिया है जो जन्म से लेकर प्रौढ़ अवस्था तक चलती रहती है।

बाल–विकास की विशेषताएँ

(1) यह बालक का सर्वांगीण विकास है।
(2) यह बालक की बाल्यावस्था में अधिकतम होता है।
(3) यह वंशानुगत् एवं वातावरणिक होता है।
(4) व्यवहार का विकास उसकी वृद्धि (growth) एवं शिक्षण अधिगम पर आधारित होता है।
(5) विकास एक विशेष प्रक्रिया पर आधारित होता है, जिस प्रकार बालक चलने से पहले खड़ा होना सीखता है, बोलने से पहले बुदबुदाना सीखता है।
(6) विकास सामान्य (general) से विशिष्ट की ओर अग्रसर होता है।
(7) विकास सिर से पैरों की ओर होता है।
(8) विकास केन्द्र, (centre) हृदय/छाती से बाह्य की ओर होता है।
(9) विकास की गति सदैव परिवर्तित होती रहती है।
(10) विकास एक निश्चित एवं अनुमानित प्रक्रिया पर आधारित होता है।

विकास के विभिन्न पहलू

(1) मानसिक विकास (Intellectual/Mental development)
(2) शारीरिक विकास (Physical development)
(3) सामाजिक विकास (Social development)
(4) गामक विकास (Motor development)
(5) भाषायी विकास (Language development)
(6) संवेगात्मक विकास (Emotional development)
(7) अध्यात्मिक विकास (Spiritual development)
(8) समीक्षात्मक विकास (Perceptible development)
(9) सौंदर्यात्मक विकास (Personality Centri development)
(10) व्यक्तित्व का विकास (Personality development)
(11) नैतिक एवं चारित्रिक विकास (moral/character development)
(12) सृजनात्मक विकास (creative development) …… इत्यादि

ई.बी. हरलॉक के अनुसार परिवर्तन निम्न प्रकार के होते हैं। –

– आकार में परिवर्तन (change in size)
– अनुपात में परिवर्तन (change in proportion)
– पुराने लक्षण लुप्त होना (disappearance of old features)
– नए लक्षण प्रकट होना (acquisition of new features)

प्राथमिक स्तर पर बाल विकास की उपादियता/उपादेयता

(1) अनुवांशिकी तथा वातावरण की भूमिका का ज्ञान :– बाल विकास का अध्ययन शिक्षक को बालक की शक्तियों, योग्यताओं, क्षमताओं, आदतों, व्यवहार एवं गुणों की जानकारी प्रदान करता है। आनुवांशिकी एवं वातावरण दोनों के ही सहयोग से बालक शक्तियों की जानकारी को समझते हुए, एवं दोनों के प्रभाव को समझते हुए उपयोगी बनाया जा सकता है।

(2) विभिन्न चरणों के विकास के स्तर एवं प्रक्रिया का ज्ञान :– बाल विकास का अध्ययन शिक्षक को विकास की गति एवं संपूर्ण प्रक्रिया से अवगत कराता है, जिसके द्वारा शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को बालकों के मानसिक एवं शारीरिक स्तर के अनुकूल प्रदान किया जा सकता है। उचित गति एवं प्रक्रिया न होने पर अतिरिक्त एवं उपयुक्त सुझाव दिए जा सकते हैं।

(3) विकास के व्यवहार एवं व्यक्तित्व गुणों पर पड़ने वाले प्रभाव की जानकारी :– बालक विकास की मंजिल पर जैसे–जैसे आगे बढ़ता है, वैसे–वैसे उसके व्यवहार, गुणों आदि में परिवर्तन आते रहते हैं, इन परिवर्तनों के स्वरुप एवं दिशा को निर्धारित करना अध्यापक का कर्त्तव्य है। बालकों की आवश्यकतानुसार उपयुक्त शिक्षण विधियों एवं शिक्षण अधिगम सामग्री का चयन किया जा सकता है।

(4) विकास तथा व्यवहार के माप–दण्डों की जानकारी – बाल–विकास के अध्ययन से शिक्षक को जानकारी मिलती है कि एक विशेष चरण पर उसके साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाना चाहिए, बाल–विकास के अध्ययन द्वारा शिक्षक विशिष्ट छात्रों को विशिष्ट शिक्षा प्रदान कर सकता है।

वृद्धि एवं विकास में अंतर

वृद्धि		विकास	
1.	वृद्धि शारीरिक परिवर्तन को दर्शाती है।	1.	विकास शारीरिक, मानसिक, शैक्षिक, सभी परिवर्तन को दर्शाता है।
2.	वृद्धि मात्रात्मक होती है।	2.	विकास मात्रात्मक के साथ गुणात्मक भी होता है।
3.	वृद्धि एक समय के बाद रुक जाती है।	3.	विकास आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है।
4.	वृद्धि को मापा जा सकता है।	4.	विकास का मूल्यांकन किया जाता है।
5.	वृद्धि विकास का आधार है।	5.	जबकि बिना वृद्धि के विकास संभव नहीं (विकास में वृद्धि समाहित होती है)।
6.	वृद्धि–विकास का अंश होता है।	6.	विकास में सम्पूर्ण वृद्धि शामिल होती है।

वृद्धि और विकास के सिद्धांत –

1. **निरंतरता का सिद्धांत –**
2. **व्यक्तिगत भिन्नता का सिद्धान्त** – (व्यक्तियों में भिन्नता)
3. **परिमार्जिता का सिद्धांत** – पर्यावरण में अच्छे परिवर्तन से बच्चों का विकास होगा।
4. **पूर्व कथनीय/निश्चित प्रारुप का सिद्धांत** –

5. **समान प्रतिमान का सिद्धांत –** इंसान – इंसान की तरह विकास करेगा। हर प्रजाति का अपना एक अलग एक पेट्रर्न होता है। जिसके माध्यम से वह अपना विकास करता है।
6. **समन्वय का सिद्धांत –** शरीर के अंगों में समन्वय।
7. **पुनरावृत्ति का सिद्धांत** – वृद्धावस्था में व्यवहार बच्चों की तरह होता है।
8. **वंशानुक्रम एवं पर्यावरण में अन्तःक्रिया का सिद्धांत** – (Hereditary – 80% Environment – 20%)
9. **चक्राकार प्रगति का सिद्धांत –** विकास Spiral तरीके से होता है।

वृद्धि और विकास की अवस्थाएँ –

1. **गर्भावस्था –** (9 महीने 10 दिन) यह अवस्था गर्भधारण से प्रारम्भ होकर जन्म तक की होती है।
2. **शैशवास्था –** (0-2 साल) इसमें (2 हफ्ते 2 साल) की अवस्था होती है।
3. **बाल्यावस्था –** (2 से 12 साल)
   - यह अवस्था बालिकाओं में 10 वर्ष, और बालकों में यह, 12 वर्ष तक की होती है। इसे दो भागों में बांटा गया है।

   (1) **प्रारंभिक बाल्यावस्था** – (2 से 6 साल)

   (2) **उत्तर बाल्यावस्था** – (6 से 10 साल) बालिकाओं में और (6 से 12 साल) बालकों में। इस अवस्था से बालक–बालिकाओं में यौन परिपक्वता आ जाती है।
4. **किशोरावस्था** – इसे तीन भागों में बांटा गया है।

   (1) **तरुणावस्था या प्राक्ककिशोरावस्था** –
   - लड़कियों में (11-13 वर्ष तथा लड़कों में (12-14 वर्ष)
   - इस अवस्था में बालिका का शरीर एक वयस्क के शरीर का रुप ले लेता है।

   (2) **प्रारंभिक किशोरावस्था** –
   - (13-14 साल) से प्रारंभ होकर 17 साल तक चलती है।

- मानसिक व शारीरिक विकास लड़कों में अधिक होता है।
- इसमें विवेक तथा उचित–अनुचित का ख्याल अधिक नहीं रहता है।

(3) **परवर्ती किशोरावस्था –**

- (17-19) वर्ष तक होती है।
- बालक पूर्णरुप से शारीरिक व मानसिक रुप से स्वतंत्र हो जाता है।
- भविष्य के बारे में तरह–तरह की योजनाएं बनाने लगता है।
- विपरीत लिंग के व्यक्तियों के प्रति अभिरुचि अधिक हो जाती है।

5. प्रौढ़ावस्था –

(1) **प्रारंभिक वयस्कता –**

- यह अवस्था लगभग (21-40) साल की होती है।
- व्यक्ति शादी कर अपना घर–परिवार बसाता है, और किसी व्यवसाय में लग जाता है।
- अपने आत्म विकास को मजबूत कर आगे बढ़ता है।

(2) **मध्यावस्था –**

- यह अवस्था (40-60) साल की होती है।
- व्यक्ति द्वारा अपनी पूर्वप्राप्त उपलब्धि तथा आकांक्षाओं को काफी सुदृढ़ किया जाता है।

(3) **वृद्धावस्था –**

- यह अवस्था 60 साल से मृत्यु तक होती है।
- शारीरिक तथा मानसिक शक्ति धीरे–धीरे क्षीण होती जाती है।
- सामाजिक कार्यो में लगाव कम होता चला जाता है।

शिक्षा मनोविज्ञान में बाल्यावस्था से परवर्ती किशोरावस्था तक का महत्व अधिक बताया गया है।

वृद्धि और विकास को प्रभावित करने वाले कारक

(कारक)

वंशानुक्रम	**वातावरण**
1. शारीरिक संरचना	1. पौष्टिक भोजन
2. बुद्धि	2. शारीरिक वातावरण एवं क्रियाकलाप
3. लिंग भेद	3. दुर्घटना
4. स्नायु मंडल	4. पारिवारिक वातावरण
5. अन्तः स्त्रावी ग्रन्थियाँ	5. विद्यालय का वातावरण
	6. बचपन का अनुभव
	7. मित्र तथा पड़ोस
	8. मौसम और जलवायु
	9. विज्ञान तथा तकनीकी
	10. देश की शासन व्यवस्था
	11. धर्म

विकास के पक्ष

(1) शारीरिक विकास (2) मानसिक विकास (3) संवेगात्मक विकास (4) भाषायी विकास
(5) सामाजिक विकास (6) नैतिक विकास (7) सांस्कृतिक विकास

मानसिक विकास – इसे संज्ञानात्मक विकास कहते हैं। यह दो चीजों का योग है।

(अनुभव + परिपक्वता = मानसिक विकास)

जीन पियाजे का जन्म 9 अगस्त 1886 में हुआ। मृत्यु 16 सितम्बर 1980 में हुई।

जीन पियाजे के सिद्धांत की महत्वपूर्ण शब्दावली –

(1) **अनुकूलन** – → आत्मसातीकरण
→ समाविष्टीकरण

पर्यावरण के साथ व्यवस्थित करना।

(परिपक्वता + अनुभव = संज्ञानात्मक विकास)

(1) आत्मसातीकरण –

- बच्चों में वातावरण के साथ अनुकूलन करने की जन्मजात क्षमता होती है और इस क्षमता का प्रयोग करके बच्चा अपने वातावरण के साथ अनुकूलन करता है। बच्चे में अनुकूलन करने के समय दो तरह की प्रक्रिया सम्पादित की जाती है।
- आत्मसातीकरण अनुकूलन की ऐसी प्रक्रिया होती है। जिसमें पूर्व ज्ञान में या पूर्व विद्यमान मानसिक संरचना में बिना परिवर्तन किए समायोजन करता है।

  उदाहरण के रुप में दो साल का बच्चा पूर्व अनुभव के आधार पर बकरी के बच्चे को कुत्ते का बच्चा मान लेता है।

(2) समाविष्टीकरण –

- यह अनुकूलन की एक ऐसी प्रक्रिया होती है। जिसमें बच्चा पूर्व ज्ञान अथवा पूर्व विद्यमान मानसिक संरचना में परिमार्जन करके वातावरण के साथ समायोजन करता है।
- यह प्रक्रिया आत्मसातीकरण के उपरांत संभव होती है।

  उदाहरण के तौर पर बच्चा बकरी और कुत्ते के बच्चे में विभेद करना जान जाता है।

स्कीमा –

प्रत्येक व्यक्तियों, वस्तुओं अथवा जीवन की परिस्थितियों के साथ व्यवहार करने का अपना खुद का ढंग होता है। इसे स्कीमा कहा जाता है।

(1) व्यवहारात्मक स्कीमा

(2) संज्ञानात्मक स्कीमा

(1) व्यवहारात्मक स्कीमा – इससे तात्पर्य है कि जब बच्चा कोई भी शारीरिक क्रिया या व्यवहार करता है तो उसका अपना खुद का ढंग होता है। जैसे – हर बच्चे का चलने, रोने, व खाने का तरीका, उठने – बैठने का तरीका ये सभी उसके व्यवहारात्मक स्कीमा की तरफ इंगित करते हैं।

- इसमें मानसिक क्रिया का योगदान बहुत कम होता है।
- तथा शारीरिक क्रिया का योगदान अत्यधिक होता है।

(2) संज्ञानात्मक स्कीमा – यह एक ऐसी मानसिक संरचना (व्यवहार) होती है। जिसमें बच्चा संज्ञानात्मक रुप से कोई भी क्रिया करते समय उसका अपना खुद का ढंग होता है। जैसे – गणितीय संक्रिया, I.Q. संक्रिया इत्यादि।

(3) आत्मकेन्द्रियतावाद (2-7 साल) – आत्मकेन्द्रियता एक ऐसा दोष है। जिसमें बच्चा अत्यधिक स्वार्थ केन्द्रित हो जाता है। उसे ऐसा लगता है कि दुनिया की जितनी वस्तुएं बनी हैं, सिर्फ उसके लिए बनी है। उसकी माँ सिर्फ उसी की माँ है भाई की नहीं इस दोष से ग्रसित बच्चा भावनात्मक रुप से आत्म केन्द्रित होता है। वह नैतिकता से परिचित नहीं होता। उसके खिलौनों को कोई भी छू नहीं सकता।

(4) जीववाद – (2-7) साल के बच्चे में पाए जाने वाला यह दोष है। जिसमें बच्चा निर्जीव वस्तु को सजीव मान लेने की गलती बार–बार करता है। उदाहरण के तौर पर पंखा चल रहा है तो उसमें जान है। अकेले में गुड़िया से बाते करना

- अगर बच्चा जमीन पर गिर जाए और चोट लग जाए तो माँ द्वारा उसे पीटने पर चुप हो जाना।
- यह जीववाद की तरफ संकेत करते हैं।

(5) विलोमीयता – यह एक ऐसी विशेषता है जो 7 साल से कम के बच्चों में नहीं होती। इसमें बच्चे के द्वारा किसी भी वस्तु या घटना के पूर्व आकार को संरक्षित किया जाता है।

जैसे – गीली मिट्टी की गेंद से किसी खिलौने का निर्माण करने के बाद उसके पूर्व आकार से परिचित होना।

- इसे (विलोमीयता) पीछे की तरफ सोचने की योग्यता भी कहा जाता है। जैसे – 1, 2, 3, 4, 5 से पीछे आकर 5, 4, 3, 2, 1 गिनना।

(6) तार्किक गुणिता – इसका तात्पर्य है कि बच्चे के द्वारा किसी वस्तु के त्रिविमीय संरचना पर ध्यान केन्द्रित करने से है। अतः एक साथ ल., चौ., और ऊँ. सभी पर ध्यान केन्द्रित करने से बच्चा सही परिणाम बता देता है।

- **जैसे –** लम्बे गिलास और चौड़े गिलास में समान पानी होने पर दोनों में बच्चे के द्वारा समान पानी बताया जाता है।
- तार्किक गुणिता के अभाव में बच्चा लम्बे गिलास वाले पानी को ज्यादा बताएगा। जबकि चौड़े गिलास वाले पानी को कम।

नोट – विलोमीयता और तार्किक गुणिता को मिलाकर संरक्षण का सिद्धांत बनता है।

विलोमीयता + तार्किक गुणिता = संरक्षण का सिद्धांत।

जीन पियाजे की संज्ञानात्मक विकास की अवस्थायें –

इसे चार अवस्थाओं में बांटा गया है –

1. संवेगीगामक अवस्था
2. पूर्व संक्रिया अवस्था
3. मूर्त संक्रिया अवस्था
4. औपचारिक संक्रिया अवस्था

(1) संवेगीगामक अवस्था – सहज क्रियाएँ किसी चीज को चूसना, निगलना, ढकेलना, खींचना, पहुंचना, किसी चीज को ग्रहण करना। यह सारी क्रियाएँ इस अवस्था में होती हैं।

1. सभी समस्याओं का इन्द्रीयगामक समाधान।
2. संवेगीगामक क्रियाओं में समन्वय।
3. जिज्ञासा की उत्पत्ति (क्या वाले प्रश्न)
4. अनुकरण की उत्पत्ति
5. भौतिक वस्तुओं का स्थायित्व

6. अर्धभाषी
7. व्यवहारिक बुद्धि

(2) पूर्व संक्रिया अवस्था – इसे दो अवस्था में बांटा जाता है।

(a) पूर्व प्रत्ययात्मक काल – 2-4 साल

(b) आन्तप्रज्ञ अवस्था – 4-7 साल

1. आत्मकेन्द्रीयता की समस्या।
2. जीववाद की समस्या।
3. केवल द्विविमीय चिन्तन।
4. विलोमीयता की समस्या।
5. तार्किक गुणिता की समस्या।
6. भाषा का तीव्र विकास – इसे भाषा विकास की अवस्था भी कहते हैं।
7. सांकेतिक क्रियाएँ।
8. सामाजिक क्रियाओं में रुचि। (विभिन्न खेल)
9. अतार्किक चिंतन।

(3) मूर्त संक्रिया अवस्था –

1. विचारों में विलोमीयता होती है।
2. तार्किक गुणीता की योग्यता विकसित हो जाती है।
3. मूर्त वस्तुओं के प्रति क्रमबद्ध चिन्तन का विकास होता है।
4. आत्मकेन्द्रीयता का अंत।
5. जीववाद का अंत।
6. वस्तुओं का समूहीकरण।

(4) औपचारिक संक्रिया अवस्था –

1. उच्च स्तरीय संतुलन आत्मसातीकरण तथा समाविष्टीकरण में।
2. सभी समस्याओं का तार्किक समाधान।
3. अमूर्त नियमों को प्रयोग करने की योग्यता।
4. अबोध का स्थानान्तरण (समझ)।

शिक्षा में जीव पियाजे के सिद्धांत की महत्ता –

1. सह सिद्धांत बुद्धि की व्यवहारिक व्याख्या करता है।
2. शिक्षण में प्रेरणा तथा अभिरुचि को महत्व दिया गया।
3. वास्तविक तरीके से चिंतन प्रक्रिया की व्याख्या।
4. अधिगम के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने पर जोर देता है।
5. कर के सीखने पर बल देता है।
6. यह सिद्धांत शिक्षण सहायक सामग्री के प्रयोग पर बल देता है।
7. यह बालक केन्द्रित शिक्षा प्रणाली पर जोर देता है।
8. यह शिक्षा के क्षेत्र में निर्देशन तथा परामर्श पर जोर देता है।
9. यह अभिभावकों के लिए महत्वपूर्ण सिद्धांत है।

EduBull.com